आचार्य श्रीजिनमणिसागरसूरि

[भँवरलाल नाहटा]

श्रीक्षमाकल्याणजी महाराज के संघाड़े में श्रीजिनमणिसागरसूरिजी महाराज एक विशिष्ट विद्वान, लेखक, शान्तमूर्ति और सत्क्रियाशील साधु हुए हैं। वे निस्पृह, त्यागी और सुविहित क्रियाओं, विधि-मर्यादाओं के रक्षक थे। आपका जन्म संवत् १९४३ में रूपावटी गांव के पोरवाड़ गुलाबचन्दजी की पत्नी पानोबाई की कुक्षि से हुआ। आपका मनजी नाम था और मनमौजी ऐसे थे कि साधुओं के पास तो नहीं जाते पर सांपों से खेलते थे, उन्हें उनका कोई भय नहीं था। एक वार गाँव वालों के साथ सिद्धाचलजी यात्रार्थ चैत्रीपूनम पर गये और वहाँ पर आपको अपूर्व शान्ति मिली। आपका हृदय आत्मकल्याण करने और प्रभु के मार्ग पर चलने के लिये लालायित हो गया। माता-पिता वृद्ध थे, लोगों ने गाँव जाकर कहा—माता पिता आये पर मनजी तो अपनी धुन के पक्के थे भगवान के समक्ष सर्व त्याग का व्रत ले लिया था। माता-पिता को निरुपाय होकर आज्ञा देनी पड़ी। आपने सं० १९६० वैशाख सुदि २ को सिद्धाचलजी में मुनि सुमतिसागरजी के पास दीक्षा ली। दीक्षा से दो दिन पूर्व एक वृद्ध मुनिराज ने कहा—तुम तपागच्छ के पोरवाड़ हो, खरतरगच्छ में क्यों दीक्षा लेते हो! पर उन्होंने सोचा धर्म के नाम पर यह भेद बुद्धि क्यों? मुझे आत्म कल्याण करना है, शास्त्रों का अध्ययन करके सही मार्ग पर चलना हो श्रेयस्कर है न कि गड्डर प्रवाह से। उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ किया और सं० १९६४ में तो संघ के आग्रह और उपकार बुद्धि से गुरु-शिष्यों ने रायपुर और राजनांदगाँव अलग अलग चातुर्मास किया। योगिराज श्रीचिदानन्दजी (द्वितीय) कृत 'आत्मभ्रमोच्छेदन भानु' नामक ८० पृष्ठ की पुस्तिका को विस्तृत कर ३५० पेज में उन्हीं के नाम से प्रकाशन करवाया, यह घटना आपकी निःस्वार्थता और उदारता को प्रकट करती है।

उस समय समेतशिखरजी के अधिकार को लेकर श्वेताम्बर और दिगम्बर समाज में बड़ा भारी केस चल रहा था, उधर सरकार अपनी सेना के लिये बूचड़खाना खोलना चाहती थी। श्वे० समाज की ओर से पैरवी करने वाले कलकत्ता के राय बद्रीदासजी थे। उन्होंने कार्य सिद्धि के लिये अध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता महसूस की और दैवी सहायता प्राप्त करने के लिये साधु समाज से निवेदन किया। समय इतना कम था कि पैदल पहुँचना सम्भव नहीं था। सुमतिसागरजी के पास यह प्रस्ताव आया तो उन्होंने मणिसागरजी को माननीय गुलाबचंदजी ढड्ढा और धनराजजी बोथरा के साथ रेल में सम्मेतशिखरजी भेज दिया। मणिसागरजी की तरुणावस्था थी, धुन के पक्के और गुरु आम्नाय के बल पर उन्होंने तपश्चर्यापूर्वक सम्मेतशिखरजी पर जाकर जो अनुष्ठान किया, उससे श्वेताम्बर समाज को पूर्ण सफलता प्राप्त हो गई। समाज में इनकी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा बढी, कलकत्ता संघ ने इन्हें कलकत्ता बुलाया और छः वर्ष कलकत्ता बिताये। अनुष्ठान के लिये रेल में शिखरजी आने का दण्ड प्रायश्चित मांगा तो उस समय के महामुनि कृपाचन्दजी, आदि खरतरगच्छ एवं तपागच्छ के मुनियों की ओर से निर्णय मिला कि यह दण्ड देने का काम नहीं, शासन प्रभावना के कार्य में साधुजीवन के उपवासादि तथा ईर्यापथिकी नित्य-क्रिया ही पर्याप्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० १९६६ में विद्याविजयजी ने "खरतरगच्छ वालों की पर्युषणादि क्रियायें लौकिक पंचांगानुसार होने से अशास्त्रीय हैं, इस विषय का विज्ञापन निकाला। राय बद्रीदास जी आदि खरतरगच्छ के श्रावकों के आग्रह से उन्होंने इस भ्रमपूर्ण प्रचार को रोकने के लिये विद्वतापूर्ण उत्तर देने की प्रार्थना की तो आपने शास्त्र प्रमाण के हेतु ग्रन्थ सुलभ करने के लिये लम्बी सूची दी। बद्रीदासजी ने तत्काल पाटण, खंभात आदि स्थानों से प्राचीन ताड़पत्रीय और कागज की हस्तलिखित प्रतियां मंगा कर प्रस्तुत की। मणिसागरजी ने पहले तो एक सारगर्भित छोटा लेख लिखकर जिनयशः सूरिजी, शिवजीरामजी, कृपाचन्दजी व प्रवर्त्तिनी पुण्यश्रीजी आदि को भेजा। सबने णिसागरजी के लेख की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की, उसे प्रकाशित करवाया यही लेख आगे चलकर एक हजार पेज के 'वृहत्पर्यूषणा निर्णय' ग्रन्थरुप में प्रकाशित हुआ।

कलकत्ते से विचरते हुए बम्बई पधारने पर कृपाचन्द्र-सूरिजी ने सुमतिसागरजी को उपाध्याय पद व मणिसागरजी को पण्डित पद से विभूषित किया। सं० १९७० में तपागच्छ के कई महारथी बम्बई में आ विराजे और तपागच्छ की ओर से कलकत्ते वाले विवाद को उठाने के साथ साथ प्रभु महावीर के षट् कल्याणक मान्यता का भी विरोध किया। दोनों ओर से इस विवाद में चालीसों पर्चे निकले। मणिसागरजी द्वारा शास्त्रार्थ का आह्वान करने पर कोई उनका सामना न कर सका जिससे सर्वत्र खरतरगच्छ का सिक्का जम गया और कोई खरतरगच्छ की मान्यता को अशास्त्रीय कहने का दुस्साहस न कर सका।

जैन समाज में मणिसागरजी अपने पाडित्य और शास्त्रार्थ के लिये प्रसिद्धि पा चुके थे। देवद्रव्य के विषय को लेकर सागरानन्दसूरिजी और विजयधर्मसूरिजी के मतभेद-विवाद चलता था। मणिसागरजी भी शास्त्र चर्चा के लिये इन्दौर पधारे। और विजयधर्मसूरिजी से पत्र व्यवहार किया। जब टालमटूल होने लगी तो मणिसागरजी ने देवद्रव्य निर्णयः नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। इन्दौर में स्थानकवासी प्रसिद्धवक्ता चोथमल जी के शिष्य ने 'गुरु गुण महिमा' पुस्तिका में मुखवस्त्रिका को लेकर विवाद खड़ा किया जिसमें मूर्तिपूजक समाज की निन्दा की गई। आचार्य श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी वहां पर थे। उपधान चलता था, पूर्णाहुति पर सुमतिसागरजी को महोपाध्याय पद व मणिसागरजी को पन्यास पद दिया गया। स्थानकवासियों की ओर से आचार्य श्री के पास पुस्तक का उत्तर मांगा गया तो शान्तमूर्त्ति आचार्य महाराज ने मणिसागरजी की ओर साभिप्राय देखा। उन्होंने दूसरे ही दिन विज्ञप्ति निकालकर शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया, पर निर्धारित मिती से पूर्व ही मुनि चौथमल जी अपने शिष्य सहित विहार कर गये। मणिसागरजी चुप न बैठे उन्होंने आगम प्रमाण सह 'आगमानुसार मुँहपत्ति का निर्णय और जाहिर उद्घोषणा नं० १-२-३ पुस्तक लिखकर प्रकाशित करवा दी।

वर्तमान काल में हिन्दी भाषा में जैनागमों के प्रकाशन से जनता का विशेष उपकार हो सकता है, इस उद्देश्य से आपने कोटा में जैन प्रिण्टिंग प्रेस को स्थापना करवाई और इसके द्वारा ७-८ आगमों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाये। गुरुजी की वृद्धावस्था और प्रकाशनादि के लिए आप १४ वर्ष तक कोटा के आस-पास रहे। प्रकाशन व्यवस्था आदि बन्धन उनके त्यागी जीवन के लिये बाधक था, अतः सब कुछ छोड़कर निकल पड़े और केशरियाजी यात्रा करके आबू में योगिराज शांतिविजयजी महाराज के पास गये। ये उनके पास एक वर्ष रहे, रात्रि में घण्टों एकान्त वार्तालाप करते, गुप्त साधना करते। योगिराज ने आपको उपाध्याय पद से अलंकृत किया। मणिसागरजी में यह विशेषता थी कि प्रतिपक्षियों की कड़ी आलोचना करते हुए भी शिष्ट भाषा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और प्रेम व्यवहार रखते थे। योगिराज ने आपकी योग्यता, विद्वत्ता, निराभिमानीपन आदि का बड़ा आदर किया।

आबू से विहार कर मणिसागरजी लोहावट पधारे। श्रीहरिसागरजी महाराज और आपके गुरु महाराज एक ही गुरु के शिष्य थे अतः छोटे होने पर भी वे काका गुरु थे। दोनों का कभी परस्पर मिलना नहीं हुआ परन्तु आचार्यश्री इन्हें गच्छ का 'प्राण' समझते थे और वर्षों से बुलाते थे, अतः लोहावट जाकर आचार्य महाराज से बड़े प्रेम पूर्वक मिले। श्रावकों के आग्रह से फलोदी पधारे। फलोदी चातुर्मास में कई बालक आपके पास धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने आते थे उनमें से बस्तीमल झाबक ने मित्रों के बीच दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा कर ली और वह दीक्षा मणिसागरजी से ही लेने के कृतप्रतिज्ञ थे। मणिसागरजी ने कभी किसी को दीक्षित नहीं किया था पर बस्तीमल के निश्चय के आगे उनको दीक्षा देकर मुनि विनयसागर बनाना पड़ा। आचार्य महाराज और वीरपुत्र आनंदसागरजी के पारस्परिक मतभेद को मिटा कर गच्छ में ऐक्य स्थापित करने के लिये आपने सत्प्रयत्न करके फलोदी में एक बृहत्सम्मेलन बुला कर संगठन किया।

कँवलागच्छीय मुनि ज्ञानसुन्दरजी ने एक पुस्तक लिखी—'क्या पुरुषों की परिषद् में जैन साध्वी व्याख्यान दे सकती है ?' इसे पढ़कर आपकी शास्त्रार्थ-प्रवृत्ति जाग उठी और 'जैनध्वज में' 'हाँ !' साध्वी को व्याख्यान देने का अधिकार है" शीर्षक लेखमाला २० अंकों में निकाली जो "साध्वी व्याख्यान निर्णय" नामक पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुई।

आपने उपधान तप की आवश्यकता महसूस कर छः उपधान कराये थे। सं० २००० में बीकानेर में पौष कृष्णा १ को उपधान कराया और मालारोपण के अवसर पर स्वनामधन्य जैनाचार्य श्रीजिनऋद्धिसूरिजी महाराज ने आपको आचार्य पदसे अलंकृत किया। यद्यपि आपको पद-लालसा लेशमात्र भी नहीं थी। सम्मेतशिखर तीर्थ रक्षा के समय २२ वर्ष की उम्र में कलकत्ता संघ ने आचार्य पद देना चाहा तो आपने सर्वथा अस्वीकार कर दिया था पर बीकानेर में संघ के आग्रह और आचार्य महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य करना पड़ा।

सं० २००३ कोटा चातुर्मास में आपने गुणचंद्र, भक्तिचन्द्र और गौतमचन्दजी को दीक्षित किया। आचार्य श्रीजिनरत्नसूरिजी, उपाध्याय लब्धिमुनिजी आदि के साथ चतुर्मास कर अन्यान्य स्थानों में विचरण करने लगे। मालवाड़ा में आपने उपधान तप करवाया और मालारोपण महोत्सव पर विनयसागरजी को उपाध्याय पद दिया। इसके डेढ़ महीने बाद ता० ६ फरवरी १९५१ को वे स्वर्गवासी हो गये।

आप बड़े गीतार्थ, सरल और आत्मार्थी थे। २२ घंटे तक का मौन धारण करते और १५-१६ घंटे जप-ध्यान में बिताते थे। विनय-वेयावच्च का अद्भुत गुण था, अपने गुरुमहाराज की तो सेवा की ही पर साथियों द्वारा त्यक्त इतर साधुओं की महीनों सेवा की। मलमूत्र उठाया। आप साध्वी और श्राविका समाज से कम परिचय रखते। विहार में आरम्भ आदि न हो इसलिए रसोइया आदि साथ नहीं रखते। जैनों का घर न होता तो मार्गदर्शक के पास खाखरे आदि लेकर गाँव-गोठ में छाछ आदि लेकर विहार करते रहते। विहार में गरम पानी आदि की व्यवस्था-आरम्भ से बचकर लौंग-त्रिफलादि के प्राशुक जल से संयम साधना करते थे। आपको नाम का मोह नहीं था। लम्बे जीवन में हजारों ग्रन्थ आये, अध्ययनकर ज्ञानभंडार आदि में दे दिये पर अपने नाम से कोई ज्ञानभंडार आदि संस्था नहीं खोली। निस्पृह, शान्त और साधुता की मूर्त्ति मणिसागरजी वास्तव में एक मणि ही थे। उनका आदर्श जीवन साधकों के लिए प्रेरणासूत्र बने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org